बारह भावना (पण्डित दौलतरामजी कृत)

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव–भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिंतो अनुप्रेक्षा भाई।।१।।
इन चिंतत सम–सुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तब ही जिय शिव–सुख ठानै।।२।।
जोबन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रीय–भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई।।३।।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मन्त्र–तन्त्र बहु होई, मरतैं न बचावे कोई।।४।।
चहुँ गति दुःख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं।
सब विधि संसार–असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा।।५।।
शुभ–अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एक हि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी।।६।।
जल–पय ज्यौं जिय तन मेला, पै भिन्न–भिन्न नहिं भेला।
तो प्रकट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा।।७।।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तैं मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै किम यारी।।८।।
जो योगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे।।९।।
जिन पुण्य–पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।।१०।।
निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिवसुख दरसावै।।११।।
किन हू न करयो न धरै को, षट् द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता।।१२।।
अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ।।१३।।
जे भावमोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै।।१४।।
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी।।१५।।